पूंजीपतियों के पैसे से चलने वाली पार्टियां आखिर क्यों होंगी जनता के प्रति जवाबदेह

चंद्रप्रकाश झा

भारत में राजनीतिक दलों के अपने सदस्यों से वार्षिक सदस्यता शुल्क लेना सिर्फ एक औपचारिकता रह गई है। आना- दो आना , चवन्नी- अठन्नी , फिर चंद रूपये में परिवर्तित वार्षिक सदस्यता शुल्क से पार्टियों का खर्च पूरा नहीं होता , यह जग जाहिर है। फिर भी इसके निर्वहन की अनिवार्यता है। इसकी एक झलक खबरिया टीवी चैनलों पर तब नजर आई थी , जब 1914 के लोकसभा चुनाव से ऐन पहले बहुचर्चित पत्रकार-लेखक एवं कांग्रेस के पूर्व सांसद और प्रवक्ता रहे और हाल में मी टू की चपेट में आकर मोदी सरकार के मंत्री पद से इस्तीफा देने के लिए बाध्य हुए एम जे अकबर , भारतीय जनता पार्टी के मुख्यालय पहुंच कर इस पार्टी में औपचारिक रूप से शामिल हुए थे। तत्कालीन भाजपा अध्यक्ष (मौजूदा केंद्रीय गृह मंत्री) राजनाथ सिंह ने उन्हें ऑन कैमरा अपनी अंगुलियों से चुटकी-सी बजाकर पार्टी सदस्यता शुल्क भरने की अनिवार्यता की ताकीद की थी। तभी एम जे अकबर ने इसे पूरा किया।

राजनीतिक पार्टियों को अपना लगभग पूरा खर्च वाह्य स्रोतों से ही जुटाना पड़ता है। संसदीय लोकतंत्र में पार्टियों का खर्च चुनावों में बेतहाशा बढ़ जाता है। इसके लिए धन उपलब्ध कराने की सांविधिक राजकीय व्यवस्था करने की अर्से से की जा रही मांग के बावजूद ठोस उपाय नहीं किये गए हैं। ऐसे हालात में इक्का -दुक्का को छोड़ सभी पार्टियां , पूंजीपति वर्ग से घोषित-अघोषित चन्दा लेती हैं। भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष अमित शाह यह कहते नहीं अघाते कि उनकी पार्टी के अभी 11 करोड़ सदस्य हैं और वह भारत की ही नहीं दुनिया भर की सबसे बड़ी पार्टी है।

मगर भाजपा यह सत्य नहीं बताती है कि वह भारत की सबसे अमीर पार्टी भी है और उसे यह अमीरी राजसत्ता में रहने से, खास कर मोदी सरकार के दौरान मिली है। माना जाता है कि भारत के पूंजीपति वर्ग ने 2014 में मोदी जी के नेतृत्व में भाजपा को सत्ता में लाने में धनबल से बड़ी मदद की थी। आम लोग , चुनावों में पूंजीपति वर्ग के दखल की बारीकियां नहीं समझ पाते हैं। क्योंकि देश की 25 प्रतिशत आबादी अभी भी साक्षर नहीं है। कुछ पार्टियां ऐसी भी हैं जो अपने सदस्यों से उनकी आय के तयशुदा अनुपात में लेवी वसूलती हैं। इनमें खास तौर पर कम्युनिस्ट पार्टियां सबसे आगे हैं। त्रिपुरा के पूर्व मुख्यमंत्री माणिक सरकार सरीखे पूर्णकालिक पार्टी कार्यकर्ता समस्त आय अपनी , मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को प्रदान कर पार्टी से मिले कार्यकर्ता -वृत्ति के सहारे गुजर बसर करते हैं। लेकिन कम्युनिस्ट पार्टियों को भी चाहे -अनचाहे धन्ना सेठों से चन्दा लेना ही पड़ता है। वे अपनी सम्पदा को बढ़ाने के लिए पूंजी बाजार में प्रचलित सरकारी बॉन्ड आदि में यदा कदा निवेश भी करते हैं। भारत में टेलीकॉम क्रान्ति के जनक माने जाने वाले और कांग्रेस के करीबी गुजराती उद्यमी , सैम पित्रोदा ने कई बरस पहले सुझाव दिया था कि निर्वाचन आयोग से पंजीकृत एवं मान्यता प्राप्त हर राजनीतिक दल को कम्पनी अधिनियम के एक विशेष, सेक्शन 20 बी के तहत कुछ धर्मार्थ न्यास की तरह " नॉट फॉर -प्रॉफिट" कम्पनी में परिणत कर दिया जाए। इन पार्टियों का " कारोबार" शेयर बाजार में सूचीबद्ध किया जाए। ताकि उनके सदस्य और समर्थक इन शेयरों की खरीद फरोख्त कर इन राजनीतिक कंपनियों को चुनाव लड़ने या नहीं लड़ने के लिए उत्प्रेरित कर सकें। उस सुझाव पर कभी समुचित चर्चा ही नहीं हुई।

दिवंगत पूर्व प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह ने अपनी पार्टी की रैलियों में लोगों के खुदरा से लेकर थोक दान तक मिलाकर एकत्रित कुल रकम की " थैली" लेने की परम्परा विकसित की थी। नई दिल्ली के बोट क्लब मैदान में 23 दिसंबर 1978 को उनकी 75 वीं जयन्ती के अवसर पर किसान रैली में बड़ी धनराशि की थैली हासिल हुई थी। दिवंगत चौधरी चरण सिंह पर प्रकाशित एक पुस्तक की आंग्ल पाक्षिक, फ्रंटलाइन में समीक्षा करने वाले वरिष्ठ पत्रकार कुलदीप कुमार के अनुसार वह थैली 75 लाख रूपये की रही होगी। तय यही किया गया था कि थैली में उनके हर जन्म दिन के हिसाब से एक-एक लाख रूपये अवश्य दिए जाएं। चौधरी साहब ने किसान ट्रस्ट की स्थापना और उस ट्रस्ट की ओर से "असली भारत" नामक पत्रिका का प्रकाशन इस थैली का सदुपयोग कर ही किया था।

उनके पुत्र एवं पूर्व केंद्रीय मंत्री अजित सिंह तथा पौत्र एवं मथुरा के पूर्व सांसद जयंत चौधरी अपने राष्ट्रीय लोक दल की आय के लिए थैली परम्परा को आगे नहीं बढ़ा सके। किसान ट्रस्ट तो कायम है लेकिन असली भारत का प्रकाशन बंद हुए बरसों गुजर गए हैं। अलबत्ता , बहुजन समाज पार्टी की प्रमुख एवं उत्तर प्रदेश की पूर्व मुख्यमंत्री मायावती ने थैलियां लेने की परम्परा और आगे बढ़ाई। उनके राजनीतिक विरोधी आरोप लगाते हैं कि उन्होंने इन थैलियों से अकूत धनराशि जमा की।

वर्ष 2017 के वित्त विधेयक में आयकर अधिनियम के सेक्शन 13 ए में संशोधन कर पंजीकृत राजनीतिक पार्टियों को आय कर से मुक्त करने का प्रावधान किया गया है। बशर्ते कि वे सेक्शन 139 के सब सेक्शन 4 बी के तहत पूर्व वित्त वर्ष की अपनी आय का पूरा ब्योरा निर्धारित तिथि या उसके पहले दाखिल करें। अगर कोई राजनीतिक पार्टी ऐसा नहीं करती है तो निर्वाचन आयोग उसकी मान्यता रद्द कर सकता है। लेकिन राजनीतिक पार्टियां , कानून को धता बताकर चुनाव लड़ती रहती हैं। राजनीतिक दलों को थैली, चन्दा लेने में कोई खास अड़चन तब तक नहीं है जब तक कि ये चंदे देश के कानून के अनुसार हों। लेकिन अक्सर ये चंदे कानून के खिलाफ दिए और लिए जाते हैं। ऐसा भी हुआ कि बरसों से चल रहे इन अवैध चंदों को वैधता प्रदान करने के लिए कानून ही बदल दिया गया। मोदी सरकार ने पहले भी वित्त विधेयक (2016) के जरिए एफसीआरए में संशोधन कर राजनीतिक दलों के लिए विदेशी चंदा लेने को आसान बनाया था।

पिछले बरस संसद के बजट सत्र में सत्ता पक्ष ने मुख्य विपक्ष कांग्रेस के खुले सहयोग से राजनीतिक दलों को विदेशी चन्दा के नियमन से सम्बंधित कानून ही 42 बरसों के पूर्वकालिक प्रभाव से बदल दिया। दरअसल , विदेशी चंदा नियमन कानून (एफसीआरए) 2010 संशोधन विधेयक को केंद्रीय बजट से सम्बंधित वित्त विधेयक की तरह बिना बहस के ही "गिलोटिन" के जरिये पारित कर दिया गया। नए संशोधन से राजनीतिक पार्टियों को वर्ष 1976 से मिले सारे के सारे विदेशी चंदे पूर्वकालिक प्रभाव से बिलकुल वैध हो गए हैं। सरकार ने विदेशी कंपनी की परिभाषा ही बदल दी है। नई परिभाषा के तहत किसी भी कंपनी में 50 फीसदी से कम शेयर पूंजी , विदेशी इकाई के पास है तो वह विदेशी कंपनी नहीं कही जाएगी। नए संशोधन से राजनीतिक दलों को विदेशी चंदा लेना और भी आसान हो गया।

यही नहीं उन्हें 1976 के बाद से मिले तमाम विदेशी चंदे की जांच संभव नहीं होगी। संशोधन की बदौलत भाजपा और कांग्रेस , दिल्ली हाईकोर्ट के 2014 उस फैसले के शिकंजे से बच जाएंगी जिसमें उन्हें एफसीआरए कानून के उल्लंघन का दोषी पाया गया था। उक्त संशोधन की वैधता को चुनौती देने वाली "एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स" (ऐडीआर) नामक एक स्वैच्छिक संस्था की याचिका सुप्रीम कोर्ट ने दाखिल की गयी थी। इस याचिका पर सुप्रीम कोर्ट के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश जस्टिस दीपक मिश्रा की एक बेंच ने 2 जुलाई 2018 को केंद्र सरकार को नोटिस भी जारी किये। इस याचिका में संसद द्वारा पारित वित्त विधेयक 2018 के सेक्शन 217 और सेक्शन 236 को निरस्त करने की याचना की गई , जिनके तहत विदेशी चंदे के कानून में नियमन को लुंज -पुंज बना दिया गया है। केंद्र सरकार के पूर्व सचिव ईएएस सर्मा इस स्वैच्छिक संस्था जुड़े हुए हैं। लेकिन याचिका पर सुनवाई का क्या हुआ इसकी खबर तत्काल उपलब्ध नहीं है।

एडीआर ने विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा वित्त वर्ष 2016 -17 के अपने आय -व्यय के निर्वाचन आयोग को सौंपे ब्योरा का विश्लेषण कर जो रिपोर्ट जारी की उसमें कई तथ्य चौंकाने वाले हैं। नौ अप्रैल 2018 को जारी इस रिपोर्ट के अनुसार निर्वाचन आयोग को यह ब्योरा सौंपने की अंतिम तारीख 30 अक्टूबर 2017 थी। लेकिन सांविधिक रूप से अनिवार्य यह ब्योरा वित्त एवं विधि विशेषज्ञों से भरपूर भाजपा ने 99 दिनों की देरी से 8 फरवरी 2018 को और कांग्रेस ने तो 138 दिनों के विलम्ब से 19 मार्च 2018 को दाखिल किये। निर्वाचन आयोग से राष्ट्रीय राजनीतिक पार्टी की मान्यता प्राप्त सात दलों , भाजपा , कांग्रेस , बसपा , माकपा , भाकपा और तृणमूल कांग्रेस ने वित्त वर्ष 2016 -17 में समस्त भारत से कुल मिलाकर 1, 559.26 करोड़ रूपये की आय तथा कुल 1228. 26 का व्यय दर्शाया है। भाजपा ने सर्वाधिक कुल 710.057 करोड़ रूपये का ऑडिट किया खर्च घोषित किया है।

कांग्रेस ने अपनी कुल आय से 96.30 करोड़ रूपये अधिक 321.66 करोड़ रूपये का खर्च दिखाया है। एडीआर के विश्लेषण से पता चलता है कि 1914 में मोदी सरकार के गठन के बाद से भाजपा का खजाना खूब भरा है। वित्त वर्ष 2015 - 16 से एक ही बरस में भाजपा का खजाना 570 . 86 करोड़ रूपये से 81 . 18 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज कर 1034 . 27 करो? रूपये का हो गया। खर्च के मद में भी भाजपा सबसे आगे है। उसने वर्ष 2016 -17 में चुनाव और आम प्रचार पर 606 करोड़ रूपये और प्रशासनिक मद में 69 करोड़ रूपये खर्च किये।

मोदी सरकार ने राजनीतिक दलों को प्राप्त होने वाले चंदों यानी चुनावी फंडिंग के लिए चुनावी बांड की बिक्री की नई व्यवस्था की है। इसके तहत कोई भी व्यक्ति बांड खरीद सकता है और पार्टी फंड में वैध तरीके से चंदा दे सकता है। भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई) की अधिकृत शाखाओं के जरिए चुनावी बांडों की बिक्री की व्यवस्था है। उन बांडों को राजनीतिक दल अधिकृत बैंक के खातों के जरिए भुना सकते हैं। चुनावी बांड एक वचन पत्र (प्रॉमिसरी नोट) की तरह है, जिस पर बैंकों द्वारा किसी भी तरह का ब्याज नहीं दिया जाता है। चुनावी बांड का घोषित उद्देश्य राजनीतिक दलों को दिए जाने वाले नकद व गुप्त चंदे के चलन को रोकना है। राजनीतिक दलों को चंदे की राशि नकदी में दी जाती है, तो धन के स्रोत के बारे में, चंदा देने वाले व्यक्ति या संगठन के बारे में और यह धन कहां खर्च किया गया, इसकी भी कोई जानकारी नहीं मिलती।

भारत का कोई भी नागरिक, कंपनी या संस्था चुनावी चंदे के लिये बांड खरीद सकते हैं। इसे नकद में नहीं खरीदा जा सकता बल्कि चेक या ई-भुगतान के जरिये ही खरीदा जा सकता है। बांड खरीदते समय केवाईसी नियमों का पालन करना जरूरी है। पार्टी को फंड देने वालों की पहचान बैंक के पास गुप्त रहेगी। ये बांड 1 हजार, 10 हजार, 1 लाख और 1 करोड़ रुपये के गुणक में होते हैं। ये बांड सिर्फ उन्हीं राजनीतिक दलों को दिए जा सकते हैं जो जनप्रतिनिधित्व कानून के तहत रजिस्टर्ड हों और पिछले विधानसभा या लोकसभा चुनाव में कुल डाले गए वोट का कम से कम एक फीसदी उन्हें मिला हो।

बहरहाल , माकपा के दो बार महासचिव रहे प्रकाश कारात ने तीन दिसंबर 2018 को एक समाचारपत्र में लिखे आलेख में एलेक्टोरल बांड को राजनीतिक चंदों में घपला छुपाने वाला सरकारी उपाय बताते हुए कहा कि भाजपा को इस उपाय की आड़ में छुपने -छुपाने के बजाय उसे चन्दा देने वालों का ब्योरा सार्वजानिक करना चाहिए। कारात के अनुसार मोदी सरकार द्वारा शुरू इन बांड के परिणाम खतरनाक हो सकते हैं। इससे पूंजीपति वर्ग द्वारा सत्तारूढ़ दलों को ऐसी फंडिंग होने से राजनीतिक व्यवस्था का अपहरण हो जाने का जोखिम है जिसका ब्योरा सार्वजनिक न किया जाए। उनका कहना है कि अगर इन बांड का उद्देश्य राजनीतिक दलों को चंदों में पारदर्शिता लाना है तो चन्दा देने वाले और लेने वाले का पूरा ब्योरा सार्वजनिक करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

मोदी का रास्ता रोक न दे यह गठबंधन !

अंबरीश कुमार

लखनऊ। पिछले विधान सभा चुनाव में एक नारा लगा था अखिलेश यादव की सभाओं में जिसका यूपी, उसका देश। अब यूपी पर नया गठबंधन यही दावा ठोक रहा है। पिछले एक हफ्ते के घटनाक्रम के बाद उत्तर प्रदेश अब फिर देश की राजनीति बदलने के लिए तैयार हो रहा है। उत्तर प्रदेश के दो बढ़े दल समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी न सिर्फ साथ आ गए हैं बल्कि साझा चुनाव लने जा रहे हैं। इसका श्रेय भी मोदी को जाता है तो यह खतरे की घंटी भी मोदी के लिए बज रही है।

मोदी के लिए इसलिए क्योंकि पिछले कुछ महीनों से मोदी सीबीआई में ही उलझे हुए हैं। वे गठबंधन तोड़ने के लिए भी सीबीआई का इस्तेमाल कर रहे हैं तो बनाने के लिए भी। यूपी में अचानक खनन घोटाले को लेकर जिस तरह सीबीआई को आगे कर समाजवादी पार्टी के मुखिया अखिलेश यादव को घेरने का प्रयास किया गया उसने सपा और बसपा को और ताकत दे दी। जो दोनों दल महीनों से अलग रास्तों पर चल रहे थे वे साथ आ गए। मायावती ने अखिलेश यादव को फोन कर साहस बढ़ाया तो दिल्ली में साझा प्रेस कांफ्रेंस भी हुई।

शनिवार को लखनऊ के ताज होटल में मायावती और अखिलेश यादव गठबंधन की औपचारिक घोषणा करने जा रहे हैं तो सीबीआई को भी इसका कुछ श्रेय देना चाहिए तो मोदी को भी। जो सीबीआई से गठबंधन की राजनीति कर रहे हैं। पर यह गठबंधन देश की राजनीति की दिशा बदल सकता है। सिर्फ यूपी बिहार ही भाजपा को सौ सीट पीछे कर सकता है। जिससे सत्ता से बेदखल हो सकती है भाजपा। यूपी में मोदी के उभार से पहले भाजपा की जो दशा थी वह फिर उसी दिशा में बढ़ सकतीहै।

पिछली बार जब कांशीराम और मुलायम सिंह यादव मिले थे तो मंदिर मुद्दा गरमाया हुआ था। उस दौर में नारा लगा था, मिले मुलायम, कांशीराम -हवा में उड़ गए जय श्रीराम। और हुआ भी वही। सपा-बसपा पूरी ताकत के साथ सत्ता में लौटे। इस बार भी लोगों का यही आकलन है। इतिहास दोहराया जा सकता है। कोई टकराव भी नहीं है। मायावती को देश और अखिलेश को प्रदेश देखना है। माना यह जा रहा है कि त्रिशंकु लोकसभा में पचास से ज्यादा लोकसभा सीट आने के बाद मायावती सबसे मजबूत दावेदार होंगी। राहुल गांधी वैसे भी तब तक दावेदार नहीं बनेंगे जब तक कांग्रेस को बहुमत न मिले। जो इस लोकसभा में अभी दिख नहीं रहा है।

सूत्रों के मुताबिक सपा और बसपा किसी तय फार्मूले पर जाने की बजाय हर सीट जो जीतने के लिहाज से लड़ने जा रहे हैं। मसलन अगर किसी किसी सीट पर पिछले चुनाव में सपा दूसरे नंबर पर रही हो तो जरुरी नहीं कि वह सीट सपा को ही मिले अगर उसमे किसी तरह के बदलाव से जीत सुनिश्चित हुई तो वह बदलाव होगा। सीटों की संख्या आसपास ही होगी। कांग्रेस के लिए दो सीट सपा छोड़ती आई है वह परम्परा जारी रहेगी।

लोकदल के साथ कुछ क्षेत्रीय दल मसलन अपना दल आदि भी समायोजित हो सकते हैं.दरअसल उत्तर प्रदेश में कांग्रेस को लेकर गठबंधन का आकलन अलग हैं। राजनैतिक टीकाकार सीएम शुक्ल के मुताबिक कांग्रेस अगर अकेले लड़ती है तो उस दशा में विपक्ष को ज्यादा फायदा हो सकता है। वजह कांग्रेस का अगला वोट बैंक है। यह वोट बैंक कांग्रेस के सपा बसपा के खेमे में जाते ही बिदक जाता है और भाजपा की तरफ लौट जाता है। पर कांग्रेस अगर अकेले लड़ती है तो उससे भाजपा के वोट बैंक में ही कुछ कतरब्योंत करता है। यह एक आकलन है। बहरहाल उत्तर प्रदेश में दलित और पिछड़ों का यह एक मजबूत और आक्रामक गठबंधन बनता नजर आ रहा है। खास बात यह है कि यह प्रयोग सिर्फ यहीं नहीं तीन चार प्रदेशों में भी कुछ न कुछ असर डालेगा। खासकर मध्य प्रदेश, राजस्थान जैसे राज्यों में।